Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.357
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2508S01V13P007

e-ISSN No. 2394-8426
Special Issue on Scientific Research Aug'25
Issue–VIII(I), Volume–XIII

अथर्ववेदीय लोक संस्कृति – एक विचार

ज्योति गुप्ता
शोधच्छात्रा
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
Email- jyotigupta1031996@gmail.com
Mob. No.-8299450963

संस्कृति शब्द ब्रह्मा के समान ही अवर्णनीय है, जिस प्रकार ब्रह्मा व्यापक, सर्व अंतर्यामी एवं अनेक गुण धर्मों से युक्त हैं ठीक उसी प्रकार से यह लोक भी संस्कृति अनेक गुण धर्मों से युक्त है। लोक संस्कृति के माध्यम से रीति–रिवाज, कला, संगीत, नृत्य, धर्म इत्यादि जनमानस के भीतर उत्पन्न होता है। संस्कृति किसी देश, राज्य, प्रान्त आदि के समग्र गुणों का विकसित रूप है। संस्कृति को अंग्रेजी में हम "Culture" शब्द से अभिहित करते हैं। जो कि लैटिन भाषा के "कल्ट" या "कल्टस" से निर्मित हुआ है। जिसका अर्थ होता है, विकसित करना, परिष्कृत करना आदि यदि अतः में कहा जाय तो जनमानस के आन्तरिक प्रवृत्तियों से जो कुछ भी विकसित हुआ है, वह सब "लोक संस्कृति" में समाहित है। लोक संस्कृति जनसाधारण की संस्कृति है, यदि अथर्ववेद का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो उससे यह ज्ञात होता है कि यह लोक संस्कृति का परिचायक है, जिसमें जीवन–दर्शन, रहन–सहन, परम्पराओं, प्रार्थनाओं आदि का संलग्न है। अथर्ववेदीय लोक संस्कृति आज के समय में जनसाधारण को अनेक प्रकार से सिंचित करने का कार्य करती है, जैसे–दया, परोपकार, सदाचार, सहानुभूति, सहिष्णुता, सद्भावना, त्याग, नैतिकता इत्यादि जो मानवता के विकास में उपादेय सिद्ध होती है। यह वेद जन साधारण का वेद है जिसमें जनमानस की समस्त झांकी का साक्षात दर्शन प्राप्त होता है। निःसंदेह अथर्ववेद लोक संस्कृति का दर्पण है। अथर्ववेदीय लोक संस्कृति के गुण–

1–मानव के जीवन को स्थिरता प्रदान करना।
2–मानव को सदा सन्मार्ग पर चलना।
3–मनुष्य जन्म से ही ऐश्वर्यपूर्ण जीवन मूल्यों से सम्पन्न।

मानव के जीवन को स्थिरता प्रदान करना : लोक संस्कृति मानव जीवन को स्थिरता प्रदान करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती है क्योंकि संस्कृति के माध्यम से मनुष्य अपने उद्देश्य, लक्ष्य आदि में सफल होता है। यह लोक संस्कृति मानव के भीतर समाहित होकर उसको नई दिशा प्राप्त कराती है। मानव का मन अत्यन्त चंचल होता है, वह किसी एक लक्ष्य को निर्धारित नहीं कर पाता है। यह संस्कृति मानव के जीवन के उद्देश्यों को पूर्ण करने में उसकी मदद करती है, चाहे वह व्यापार से सम्बन्धित हो, रीति–रिवाज से सम्बन्धी हो, चाहे गुण–अवगुण हो, चाहे विद्या आदि हो सभी में उपादेय सिद्ध होती है। जिस प्रकार से पर्वत, वृक्ष, सागर, द्युलोक आदि अपनी स्थिरता के कारण एक स्थान पर जमे हुए हैं, ठीक उसी प्रकार से मनुष्य अपनी संस्कृति के कारण अपने जीवन के उद्देश्यों को पूर्ण करने में झुका हुआ है।

"अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत्।
आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम्।"[1]

मानव को सदा सन्मार्ग पर चलना : लोक संस्कृति मानव को सदा सन्मार्ग के लिए प्रेरित करती है। मानव–कल्याण के लिए आवश्यक है कि वह सदा सन्मार्ग का ही चुनाव करें, जिससे कभी भी दूसरे की हानि न हो और न ही उन्हें कष्ट पहुचें। संस्कृति के द्वारा सन्मार्ग पर चलकर मनुष्य के भीतर नम्रता, दया, सहिष्णुता आदि सात्त्विक गुणों का विकास होता है। इस लोक संस्कृति में मनुष्य के सभी पक्षों का समावेश होता है। अतएव मन्त्र में कथन मिलता है कि– "हे सन्मार्ग की कामना करने वाले मानवों! भगदेवता के परिश्रम के साथ किये गये तप जैसे उत्कृष्ट कर्म के द्वारा हम आपको समान ज्ञान एवं सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं, जिससे आपके चित्त तथा हृदय समान ज्ञान से युक्त हों।"

"संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः।
अथो भगस्य यच्छान्तं तेन संज्ञपयामि वः।"[2]

मनुष्य जन्म से ही ऐश्वर्यपूर्ण जीवन मूल्यों से सम्पन्न : मनुष्य अपने जन्म से ही समृद्ध परंपरा का उत्तराधिकारी होता है, क्योंकि उसके भीतर उत्तम विचारों के रूप में अनेक प्रकार के गुण, वैभव और मानसिक सम्पन्नता निहित होती है इस कारण वह अथर्ववेद के अनुसार जन्म से ही वास्तविक धनी कहलाता है। एक मंत्र में प्रार्थना की गई है– "हे पाप मिश्रित धन! आप

अन्य स्थान पर जाए, हम ऐसी संस्कृति की कामना करते हैं, जो करोड़ों सद्गुणों एवं श्रेष्ठ मूल्यों से परिपूर्ण हो। ऐसे दुर्गुण और दुर्विचार रूपी सम्पत्ति हमसे दूर रहे और हमारे अंतःकरण में केवल शुभ एवं प्रेरणादायक विचारों का वास हो।"

"प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि।"[3]

इस प्रकार से लोक संस्कृति के गुण मनुष्य के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करती है। यह गुण मनुष्य के सह विचार एवं शुभ लक्ष्मी की आधारशिला होती है। इसके साथ ही साथ लोक संस्कृति के अधोलिखित विशेषताएँ अंकित हैं, जो इस प्रकार से हैं–

आध्यात्मिक भावना : अथर्ववेद केवल भौतिक सुखों की प्राप्ति का उपाय नहीं बताता है, बल्कि आत्मिक उन्नति का भी मार्ग प्रशस्त करता है। जब मनुष्य भौतिक सुखों को मिथ्या मानते हुए आध्यात्मिकी सुखों की प्राप्ति के लिए ब्रह्म् को प्राप्त करता है तो वह देश, जाति, समाज, विश्व के लिए अत्यन्त उपादेय होता है। जब मनुष्य में आध्यात्मिकी भावना जाग्रत होती है तो वह संसार में निर्भयता और सुरक्षा की भावना महसूस करता है। मनुष्य का जीवन केवल आनन्द मात्र के लिए नहीं है, अपितु आत्मोन्नति का प्रमुख साधन भी है। आध्यात्मिकी अनुभूति मनुष्य को ईश्वर बना देती है, वह समस्त प्राणियों को एकता के सूत्र में बांधता है। यह विचार कि सभी प्राणी की रचना परमेश्वर ने की है, इससे एकाकार महसूस होता है। आध्यात्मिक बल के द्वारा मनुष्य सत्य, अहिंसा, संयम, अस्तेय इत्यादि गुणों से लाभान्वित होता है। आध्यात्मिकी शक्ति ब्रह्म्–प्राप्ति का सरल मार्ग बताया गया है, जिससे मनुष्य इस लोक से परलोक सुख की अनुभूति करता है। आध्यात्मिकी भावना के द्वारा मनुष्य संस्कृति से जुड़ा रहता है। जो मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य बताया गया है। आध्यात्मिकी प्रवृत्ति से मन में दया, परोपकार, उदारता, सहानुभूति आदि की उत्पत्ति होती है, जो राष्ट्रीय संस्कृति की एक वृहद् पहचान है, जिससे मनुष्य अपने राष्ट्र, देश एवं प्रान्तों को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित करता है। आध्यात्म के विषय में अथर्ववेद के मंत्र में कहा गया है कि– "जिसने इस सृष्टि की रचना की है, वही सूर्य, वही देवता, जिसके सहस्रों मूल एवं शाखाएँ व्याप्त हैं, जो तीनों प्रकार के दुःखों से रहित है और जो जल के भीतर समाहित हैं। इस बात के ज्ञाता ज्ञानी ब्राह्मण को जो दुःखी करता है, वह उस देव के क्रोध का पात्र बनता है। हे आध्यात्म देवता! आप ऐसे ब्रह्मज्य को प्रकम्पित करें तथा उन्हें पाशों में बाँहों तथा उनकी शक्ति को क्षीण अर्थात् समाप्त कर दें।"

"अयं स देवो अप्स्वश्न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः। य इदं विश्वं भुवनं जजान। तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्।"[4]

पारलौकिकी भावना : यह संसार नाशवान है और केवल यश ही अविनाशी है। ये भौतिक वस्तुएँ आपातकालीन है और यहाँ तक कि दर्दनाक भी है। सांसारिक सुख–सुविधाओं तथा पाश्चात्य संस्कृति की ओर जिनका आकर्षण है वह और भी दुःखदायी है। इन पाश्चात्य संस्कृति पर विश्वास करके जीवन को सर्वोत्तम मानना सरल है किन्तु इन पाश्चात्य संस्कृति के नियमों का पालन एवं उनका निर्वहन करने का सुख अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि जब तक मनुष्य अपने संस्कृति से नहीं जुड़ता है और अपने प्राचीन ग्रन्थों रामायण, महाभारत, वेद, पुराण, उपनिषद का अध्ययन नहीं करता है तब तक वह संस्कृति का निर्वहन नहीं कर सकता और न ही उसे पारलौकिकी भावना की अनुभूति हो सकती है। ऐसा मनुष्य केवल इस राष्ट्र में रहकर राष्ट्रीयता में बाधक तत्त्व है, जो व्यक्ति अपने देश के संस्कृति, कला, सभ्यता का न ही सम्मान करते हैं और न ही उसका आदर करते हैं, ऐसे व्यक्ति पारलौकिक भावना से मुक्त होते हैं। जो व्यक्ति इन तत्त्वों से अवगत होते हैं वह लोक संस्कृति में पारलौकिक भावना की अनुभूति करते हुए एक सच्चे राष्ट्रीयता की भावना को उपस्थित करता है। अथर्ववेद के मंत्र में कहा गया है कि– "हे सूर्य देव! जिस प्रकार से आप स्वर्गलोक और भूलोक में विचरण करते हैं और कोई भी शत्रुगण आप को पराजित नहीं कर पाता है ठीक उसी प्रकार से हे सूर्य देवता! हम पारलौकिकी भावना को प्रस्फुटित करते हुए राष्ट्र के अभ्युदय में मंगलकारी सिद्ध हों।"

"मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम्।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि।।"[5]

सदाचार पालन की भावना : हमारी लोक संस्कृति में सदाचार को सर्वोत्तम तप कहा जाता है। इसका पालन हमारी संस्कृति की पहचान है। सदाचार का पालन हमारी संस्कृति का विशिष्ट तत्त्व है। इसी संस्कृति के कारण हम बड़ों का सम्मान व आदर करते हैं। जो राष्ट्रीय स्तर पर भी देखने को मिलता है। जिनका पालन करने से चरित्र की रक्षा, संयम, मन को वश में करना तथा इन्द्रियों को वश में करना जैसे गुणों का विकास होता है। सदाचार का यदि अर्थ लिया जाय तो उनका अर्थ निकलता है–सदा अच्छा आचरण करने वाला मनुष्य। जो राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के लिए महत्त्वपूर्ण है, यही सदाचार हमें अपने लोक संस्कृति को उच्च शिखर पर ले जाने का कार्य करता है, जिनसे हम अन्य देशों से विशिष्ट कहलाते हैं। अथर्ववेद के

Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)*with* International Impact Factor 8.357
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2508S01V13P007

e-ISSN No. 2394-8426
Special Issue on Scientific Research Aug'25
Issue–VIII(I), Volume–XIII

एक मंत्र में कहा गया है कि– "हे चित्त को समान समझने वाले मनुष्यगण! भगदेवता के परिश्रम के साथ किये गये तप जैसे उत्कृष्ट कर्म के द्वारा हम आपको समान ज्ञान वाला बनाते हैं, जिससे आपके चित्त एवं हृदय समान ज्ञान से युक्त हों।"

"संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः।"[6]

वर्ण व्यवस्था : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण होते हैं। वेदों और उनके अंगों का अध्ययन एवं अध्यापन करना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, ज्ञान देना तथा धन और अन्य उपहार स्वीकार करना ब्राह्मण का कर्त्तव्य है और क्षत्रिय वर्ण का परम कर्त्तव्य है देश तथा समाज की रक्षा करना। क्षत्रिय लोग समाज एवं देश को किसी भी प्रकार के हानि, चोट या विपत्तियों से बचाते हैं और अपनी संस्कृति की भी रक्षा करते हैं तथा वैश्य कृषि, पशुपालन, व्यापार इत्यादि में दक्ष होते हैं। ये अपने कुशल बुद्धि के कारण राज्य, देश एवं प्रान्तों की शासन–व्यवस्था का संचालन करते हैं तथा देश में होने वाली कला, संस्कृति, सभ्यता इत्यादियों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं और शासन को सुचारु रूप से चलाने में सहायता प्रदान करते हैं। इसके साथ ही साथ शूद्र वर्ण भी संस्कृति के उत्थान में अपना पूरा योगदान देते हैं, इनका कार्य होता है, ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय वर्ण की सेवा इत्यादि करना। इस प्रकार से यह चारों वर्ण अपने–अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं। ये चारों वर्ण व्यवस्था जो की गई है, वह हमारी संस्कृति को राष्ट्रीय संस्कृति बनाने के लक्ष्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करती है। इन वर्ण–व्यवस्था ने हमारी लोक संस्कृति में कई विशिष्ट मूल्यों को उपस्थित किया है, जैसे कर्म, कर्त्तव्य तथा समर्पण आदि। हमारी लोक संस्कृति में वर्ण–व्यवस्था आदर्श मानवीय आह्वान के रूप में देखने को मिलता है, जो सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन को आकार प्रदान करती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि– "जिस प्रकार से विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं डरते और न ही कभी समाप्त होते हैं ठीक उसी प्रकार से हे प्राण! तुम भी नष्ट होने की शंका से नहीं डरना।"

"यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः।"[7]

आश्रम–व्यवस्था : ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। ये चार आश्रम व्यवस्था होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में 25 वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य नियमों का पालन करना होता था। इस आश्रम–व्यवस्था में ज्ञान का अध्ययन, तप का एवं सभी प्रकार के गुणों का संचय करना व्यक्ति का परम कर्त्तव्य होता था। इस आश्रम से निकलने के पश्चात् विद्यार्थी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। जिसमें शारीरिक और मानसिक समझ, भौतिक वस्तुओं का उपभोग, वैवाहिक जीवन जीना तथा वंश की स्थापना के लिए संतान उत्पन्न करना इस आश्रम के विशिष्ट कार्य हैं। पचास वर्ष के बाद इन्हें वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश मिलता था जिसमें पत्नी द्वारा ईश्वर की पूजा, संयम का पालन और योग तथा अन्य क्रियाओं में विशेष संलग्नता आदि प्रमुख कार्य है। साठ वर्ष के बाद जब भी त्याग की भावना उत्पन्न हो तो त्याग के आश्रम में अर्थात् सन्यास आश्रम में प्रवेश किया जाता है। इसमें भौतिक वस्तुओं का त्याग, समाधि में मन की स्थिति, पुण्य कमाने की प्रवृत्ति इत्यादि भावना उपस्थापित होती है। इस प्रकार से ये चारो आश्रम हमारी संस्कृति में विशेष उपयोगी होती थी जिनसे हमें त्याग, बलिदान, संयम इत्यादि गुणों की प्राप्ति होती थी इससे हम देश की सुरक्षा एवं संरक्षण में सहयोग करते थे, इसके साथ ही साथ इन्हीं गुणों से प्रत्येक मनुष्य के भीतर राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रवाद इत्यादि भावना का संचार होता था जो संस्कृति को राष्ट्रीय संस्कृति बनाने के लक्ष्य के संकल्प को भी पूर्ण करता है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि–"ब्रह्मचारी ही आचार्य बनता है तथा वही प्रजा का पालनकर्ता या रक्षक होता है, ऐसा प्रजापति ही ब्रह्मानुशासन में सम्पन्न होकर राज्य करता है"–

"आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी।"[8]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारी लोक संस्कृति ही हमें श्रेष्ठ बनाती है और संसार में हम विश्वगुरु के रूप में जाने जाते हैं, इसलिए इसके धरोहर को संभालकर हमें राष्ट्र की उन्नति में सहायक बनना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. अथर्ववेद संहिता 6/77/1
2. अथर्ववेद संहिता 6/74/2
3. अथर्ववेद संहिता 7/115/1
4. अथर्ववेद संहिता 13/3/15
5. अथर्ववेद संहिता 13/2/5
6. अथर्ववेद संहिता 6/74/2
7. अथर्ववेद संहिता 2/15/4
8. अथर्ववेद संहिता 11/7/16